इस्लाम और इंसानी हुक़ूक़

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द
अनुवादः डॉ० आरिफ़ अब्बास

(5)

किताबे इलाही कुरआने मजीद और अहादीसे पैग़म्बरे इस्लाम से खुले तौर पर साबित है कि अल्लाह तआला ने इंसान को आज़ाद पैदा किया है और उसे इंतेख़ाब का हक़ दिया गया कि अपनी अक़्ल और फ़िक्र को इस्तेमाल करके हक़ तक पहँचे। नबियों और रसूलों को हुक्म है कि लोगों को हक़ की दावत दें, मगर अक़्ली दलीलों और मंतिक़ को बुनियाद बनाकर। कुरआन मजीद में 300 से ज़्यादा आयतें लोगों को समझ, फ़िक्र और तदबीर की दावत देती हैं। हुक्मे इलाही है कि मुझे मानो, कुबूल करो, मगर दलील के साथ। अंधी तक़लीद से कुरआन करीम ने जगह-जगह मना फ़रमाया है। कुरआन मजीद अपनी बात को ज़बरदस्ती थोपने का क़ायल और हामी नहीं है, बल्कि एलान कर रखा है, तर्जुमाः आप कह दीजिए कि यही मेरा रास्ता है और मैं बसीरत के साथ खुदा की तरफ़ दावत देता हूँ (सूर-ए-यूसुफ़ः 108) इसी तरह बेशुमार रिवायतें भी इसी मज़मून की हैं। इरशादे रसूल है, तर्जुमाः अल्लाह तआला इल्म तलाश करने वालों को दोस्त रखता है। इसी तरह से हज़रत अली[अ०] का इरशाद है जहाँ अक़्ल है वहाँ दीन भी है और शर्म भी है। "अगर अल्लाह तआला को ज़बरदस्ती मंज़ूर होती तो वह खुद हर इंसान को ज़बरदस्ती तौर पर मोमिन पैदा करता।

इंसान की पैदाईश में अक़्ल और जज़्बात व ख़्वाहिशात दोनों शामिल हैं और यही इंसान का सबसे बड़ा इम्तियाज़ है। इसी सिलसिले में हज़रत अली[अ०] ने रसूले आज़म[स०] से नक़ल फ़रमाया है कि अल्लाह ने फ़रिश्तों की पैदाईश इस तरह से फ़रमाई है कि उनमें सिर्फ़ अक़्ल ही अक़्ल है और ख़्वाहिशात और जज़्बात से ख़ाली हैं और जानवरों को इस तरह पैदा किया कि उनमें जज़्बात और ख़्वाहिशात ही हैं और अक़्ल से महरूम हैं, मगर इंसान अक़्ल और ख़्वाहिशात और जज़्बात का मुरक्कब है। जब इंसान की अक़्ल जज़्बात व ख़्वाहिशात पर ग़ालिब आ जाती है तो वह फ़रिश्तों से अफ़ज़ल हो जाता है, लेकिन जब उसके जज़्बात व ख़्वाहिशात अक़्ल पर ग़ालिब आ जाते हैं तो वह जानवरों से भी नीच हो जाता है। इंसान की ज़िंदगी को बाक़ी रखने के लिए ख़्वाहिशात और जज़्बात ज़रूरी हैं, मगर उन्हें अक़्ल के ताबे होना चाहिए चालाक और चालबाज़ लोगों की यही कोशिश रहती है कि इंसानों के जज़्बात को भड़का दिया जाए ताकि वह सही तरीक़े से अपनी अक़्ल से काम न लेने पाएं और उनके इशारों पर चलें। कभी मज़हबी जज़्बात भड़काए जाते हैं तो कभी ज़बान के जज़्बात और कभी ज़ात-पात को बुनियाद बनाकर पब्लिक के जज्बात को भड़काया जाता है। पूरी कोशिश ये होती है कि जब तक जज़्बात भड़के हुए हैं, उनसे ज़्यादा से ज़्यादा सियासी फ़ाएदा उठा लिया जाए, इससे पहले कि जज़्बात ठण्डे पड़ें। आज के दौर में सबसे कामयाब सियासतदाँ वही है जो अवामी जज़्बात भड़काकर उनको अपने मक़सद के लिए इस्तेमाल करने का हुनर जानता हो, लेकिन तारीख़ गवाह है कि तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उसमान के क़त्ल के बाद अवामी जज़्बात भड़के हुए थे। उस वक़्त हज़रत अली[अ०] की बैअत के लिए लोग आए। मौजूदा सियासत का तक़ाज़ा तो यही था कि

भड़के हुए जज़्बात से अपने मफ़ाद में इस्तेफ़ादा किया जाए, मगर हज़रत अली[अ०] ने सबको वापस कर दिया ये कहते हुए कि एक हफ़्ते बाद आना। अभी क्योंकि तुम्हारे जज़्बात तुम्हारी अक़्ल पर ग़ालिब हैं, जब तुम्हारी अक़्ल जज़्बात पर ग़ालिब आ जाए तब फैसला करना। इस वाक़िए से एक बुरे इल्ज़ाम की भी रद हो जाती है। कि क़त्ल में हज़रत अली[अ०] की मर्ज़ी शामिल थी क्योंकि अगर हल्की सी भी मर्ज़ी शामिल होती तो सबसे पहले फ़ायदा उठाने वाले ख़ुद अली[अ०] होते। हज़रत अली[अ०] ने अपनी बैअत के लिए किसी पर ज़बरदस्ती नहीं की। तारीख़ में बड़े-बड़े अस्हाब के नाम मिलते हैं, जिन्होंने बैअत नहीं की। लोगों ने कहा कि आप इजाज़त दीजिए तो ज़बरदस्ती उन्हें आपके सामने ले आएं तो फ़रमाया उन्हें उनके हाल पर छोड़ दो। बहुत से लोगों ने बैअत तोड़ दी और दुश्मनों से जाकर मिल गए। अली[अ०] ने उन्हें कभी रोकने की भी कोशिश नहीं की। ये वह बात है जो आज की मुहज़्ज़ब दुनिया भी बर्दाश्त नहीं कर सकती कि हमारा कोई आदमी दुश्मन से मिल जाए।

इस्लाम में अक़्ल से काम न लेने वालों के लिए जहन्नम है। जब काफ़िरों से पूछा जाएगा कि तुम जहन्नम में कैसे भेजे गए तो वह जवाब देंगे ''अगर हम ने सुना होता या अक़्ल से काम लिया होता तो आज जहन्नम वालों में न होते।'' (सूरए मुल्कः 10) दूसरे मसलकों की किताबों के बारे में तो मैं नहीं बता सकता लेकिन शिया मसलक की सारी अहम किताबें बाबे इल्म व अक़्ल से शुरु होती हैं। रसूले इस्लाम[स०] और इमामों से सैकड़ों हदीसें इल्म और अक़्ल की अहमियत पर मिल जाएंगी। इरशादे रसूल[स०] है, तर्जुमाः ''तमाम नेकियाँ अक़्ल के ज़रिए हासिल होती हैं और जहाँ अक़्ल नहीं वहाँ दीन नहीं।'' (तोहफ़तुल उक़ूल, पेज-54) दूसरी जगह इरशाद फ़रमाया, तर्जुमाः ''अक़्ल के वसीले से दुनिया और आख़िरत दोनों हासिल होती हैं, जो अक़्ल से महरूम है वह दुनिया और आख़िरत दोनों से महरूम है।'' एक और हदीस में वारिद हुआ है कि कुछ लोग किसी शख़्स की इबादतों और नेकियों की बहुत तारीफ़ कर रहे थे, रसूलुल्लाह[स०] ने दरयाफ़्त फ़रमाया, तर्जुमाः ''उसकी अक़्ल का मेयार क्या है? लोगों ने हसरत से कहा ऐ अल्लाह के रसल[स०] हम उस शख़्स की इबादतों और बेइन्तेहा नेकियों का ज़िक्र कर रहे हैं और आप उसकी अक़्ल के बारे में सवाल कर रहे हैं। रसूलुल्लाह[स०] ने जवाब दियाः जितनी जिसकी अक़्ल ज़्यादा होगी, आख़िरत और बारगाहे इलाही में उसका दर्जा उतना ही बलन्द होगा। इसी तरह इमाम रिज़ा के लिए भी ऐसी ही रिवायत मिलती है कि किसी शख़्स की इबादतों की तारीफ़ हो रही थी। उन्होंने फ़रमायाः उसकी अक़्ल कैसी है? लोगों ने पूछा इबादतों का अक़्ल से क्या ताल्लुक़? आपने फ़रमाया, ''जिसकी जितनी अक़्ल होगी उतना उसकी इबादत का सवाब होगा।'' अक़्ल के मेयार के मुताबिक़ इबादतों का सवाब है। जिस दीन में इल्म और अक़्ल की इतनी अहमियत हो वहाँ ज़बरदस्ती मज़हब की तबदीली का कोई सवाल ही नहीं है।

पिछले मज़मून में इस हक़ीक़त की तरफ़ इशारा हो चुका है कि इस्लाम में जेहाद दिफ़ाई है, शुरुआती नहीं। इस सिलसिले में कुछ क़ुरआनी आयतों को बतौर दलील पेश किया जा रहा है ''अल्लाह के रास्ते में उस से जंग करो जो तुम से जंग कर रहे हैं और हद से आगे न बढ़ो, क्योंकि अल्लाह ज़्यादती करने वालों को दोस्त नहीं रखता।'' (सूरए बक़रा, 190) इस आयते करीमा से साफ़ साबित है कि इस्लाम में जंग दिफ़ाई हैसियत रखती है और कुछ मुफ़स्सिरीन के ख़याल में ये पहली आयत है जिसमें मुसलमानों को अपने दिफ़ाअ की इजाज़त दी जा रही है। आयत के दूसरे हिस्से में ताकीद है कि सिर्फ़ उतना ही दिफ़ाअ करो कि जितने की ज़रूरत है। दिफ़ाअ में भी ज़्यादती न करो और हद से आगे न बढ़ो। ये है इस्लाम का निज़ामे अद्लो इंसाफ़ कि दिफ़ाअ की भी सिर्फ़ उतनी ही इजाज़त है कि जितना ज़रूरी है। इस तरह सूरए हज की आयते करीमा है कि जिसके बारे में कुछ मुफ़स्सिरीन कहते हैं कि ये पहली आयत है जिसके ज़रिए मुसलमानों को अपने दिफ़ाअ की इजाज़त मिली है ''जिन लोगों से मुसलसल जंग की जा रही हो, उन्हें उनकी मज़लूमियत की बुनियाद पर जेहाद

की इजाज़त दी गई है और यक़ीनन अल्लाह उनकी मदद पर क़ादिर है" (सूरए हज, 39) ये आयत रसूल[स०] की बेसत के साढ़े चौदह साल बाद नाज़िल हुई। इसका मतलब है कि इतनी मुद्दत तक मुसलमान काफ़िरों और मुश्रिकों के ज़ुल्म बर्दाश्त करते रहे और उनको दिफ़ाअ की इजाज़त भी न थी। इस आयत से पहले 70 आयतों में अल्लाह ने मुसलमानों को दिफ़ाअ से भी मना फ़रमाया था। जब ज़ुल्म हद से बढ़ गया और मुसलमानों की मज़लूमियत अपनी इन्तेहा पर पहुँच गई तो अल्लाह तआला ने मुसलमानों को दिफ़ाअ की इजाज़त दी। इस आयत से पूरे तौर पर साबित हो जाता है कि इस्लाम में जंग की नौईयत दिफ़ाई है। दिफ़ाअ की इजाज़त है, हमले में शुरुआत करने की इजाज़त नहीं है।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू), 28 जनवरी 2010[ई०])

(6)

इस से क़ब्ल के मज़मून में जेहाद के मौज़ू पर बात हुई और ये बात साबित हुई कि इस्लाम पर ये एतेराज़ बिल्कुल ग़लत है कि ये दीन ग़ैर मुस्लिमों को बर्दाश्त करने का क़ायल नहीं और कुरआनी हुक्म है कि जहाँ काफ़िरों और मुश्रिकों को पाओ क़त्ल कर दो। ये ख़याल या तो ग़लत मानी पर मबनी है या जानबूझकर इस्लाम को बदनाम करने की कोशिश है, जो नबी, नबी-ए-रहमत हो, जिसकी लाई हुई शरीअत, शरीअते रहमत हो, जो उसका नुमाइन्दा हो जो ख़ुद अरहमुर राहेमीन है, उसके लिए हम कैसे यक़ीन कर सकते हैं कि उसके एक हाथ में कुरआन रहता था और एक हाथ में तलवार कि या तो मुसलमान हो जाओ वरना सर क़लम कर दिया जाएगा। जो पत्थर खाने के बाद भी बद्दुआ के बजाए दुआ दे रहा हो "पालने वाले! ये मुझे पहचानते नहीं हैं, इन पर अज़ाब नाज़िल न फ़रमाना" जो रास्ते में कांटे बिछाने वालों को भी बुरा न कह रहा हो, जो फ़त्हे मक्का के मौक़े पर क़ातिलों को माफ़ फ़रमा रहा हो उस से ज़ुल्म व जब्र की उम्मीद हम कैसे कर सकते हैं।

जेहाद के असल माने असलहे से जंग करने, लड़ने और क़त्ल करने के नहीं, बल्कि 'जेहाद' या अरबी के कलमे जुहद से बना है (जीम पर पेश) जिसके माने मेहनत और मशक़्क़त के हैं, यानी किसी भी राह में ज़हमत और मशक़्क़त बर्दाश्त करना जेहाद है। अल्लाह तआला हमारे किसी भी काम का मोहताज नहीं है, वह बेनियाज़ और ग़नी बिज़्ज़ात है। फिर फ़ी सबीलिल्लाह 'अल्लाह की राह में' के क्या माने हैं? उलमा-ए-केराम ने बताया कि जो काम अल्लाह की मर्ज़ी के तहत बन्दों के लिए अंजाम दिया जाए वह सबीलिल्लाह है। अल्लाह पानी नहीं पीता, उसे खाने की ज़रूरत नहीं, मगर किसी प्यासे को पानी पिला दिया या किसी भूके को खाना खिला दिया तो अल्लाह फ़रमाता है कि यही मेरा रास्ता है। ये तुम ने उसको नहीं मुझे पिलाया, उसे नहीं मुझे पिलाया है। अगर किसी मुस्तहक़ के हाथ पर कुछ रक़म रख दी, अल्लाह तआला फ़रमाता है ये मेरी मदद की है। एक मुसलमान का फ़रीज़ा है कि अगर कोई भूका हो तो उसे खाना खिलाए। अगर नंगा हो तो उसके कपड़े का एहतेराम करे, अगर बीमार हो तो तीमारदारी करे, मुसीबत के वक़्त साथ दे चाहे वह इंसान किसी मज़हब से ताल्लुक़ रखता हो। हदीसे शरीफ़ में आया है, अल्लाह तआला क़यामत के दिन एलान फ़रमाएगाः "मैं भूका, प्यासा और बीमार था, लेकिन तुम लोगों ने ध्यान नहीं दिया" बंदे हैरत से कहेंगे पालने वाले तू हर चीज़ से बेनियाज़ है तो ये बात क्यों इरशाद फ़रमा रहा है? अल्लाह तआला की तरफ़ से जवाब आएगा, मेरा फ़लाँ बन्दा भूका था, अगर तुम उसे खाना खिलाते तो मुझे अपने से क़रीब पाते। मेरा फ़लाँ बन्दा प्यासा था, अगर तुम उसे पानी पिला देते तो मुझे अपने से क़रीब पाते। मेरा फ़लाँ बन्दा बीमार था, अगर तुम उसकी तीमारदारी करते तो मुझे अपने से क़रीब पाते। (सही मुस्लिम) इमाम ज़ैनुलआबिदीन[अ०] जब किसी मुस्तहक़ को कुछ देते थे तो पहले इस रक़म को चूमते थे फिर देते थे। लोगों ने वजह पूछी तो फ़रमायाः ये माल उसके हाथ में नहीं जा रहा है। किसी ने इमाम[अ०] से पूछा हमारे पास कुछ नहीं, हम क्या दें? तो फ़रमाया होंट तो हैं, ज़बान तो रखते हो, सिर्फ़ मुस्कुराकर देख लो, यही सदक़ा है। दो

मीठे बोल, बोल दो ये भी सदक़ा है।

या लफ़्ज़े जेहाद अरबी का कलमा जोहद से बना है (जीम पर ज़बर) जिसके माने मक़सद की राह में सारी ताक़त लगा देता है, यानी मशक़्क़त काफ़ी नहीं, बल्कि मक़सद और हदफ़ भी ज़रूरी है और इस्लाम और कम्युनिज़्म में बुनियादी फ़र्क़ नहीं है कि कम्युनिज़्म में सिर्फ़ मक़सद और हदफ़ का सही होना काफ़ी है। इस हदफ़ तक पहुँचने का रास्ता सही या ग़लत कोई भी इख़्तियार किया जा सकता है। इसलिए उनका मशहूर मक़ूला है end justifiles means यानी अगर हदफ़ सही है तो कोई भी रास्ता इख़्तियार करना जाएज़ है, मगर इस्लाम का तसव्वुर इस से बिल्कुल मुख़्तलिफ़ है। यहाँ हदफ़ और मक़सद के साथ-साथ मक़सद के हुसूल का वसीला और ज़रिया भी सही होना चाहिए, इसी लिए दहशतगर्दी नाजाएज़ है, मुमकिन है किसी दहशतगर्द का मक़सद सही हो, मगर उसके हुसूल का जो रास्ता इख़्तियार किया है वह ठीक नहीं है, यहीं पर ख़ुदकश धमाका करने वाले नौजवान धोका खा जाते हैं। मुमकिन है उनका मक़सद और हदफ़ सही रहा हो, मगर जिस तरीक़े कार को उन्होंने इख़्तियार किया है, उसमें 95 फ़ीसद बेगुनाह मारे जा रहे हैं। कभी-कभी कुछ जवान पाकिस्तान या इराक़ में पकड़े गए जो किसी तकनीकी ख़राबी की वजह से अपने को धमाके से उड़ा न सके थे तो देखा गया कि वह ग़ुस्से और मायूसी से अपनी बोटियाँ नोच रहे थे कि तुम ने हमें कितने बड़े सवाब से महरूम कर दिया, हमारे मौलाना ने बताया है कि इस से सैकड़ों को मार कर मरोगे तो रसूल[स०] जन्नत में दस्तरख़्वान पर तुम्हारा इंतेज़ार करेंगे, जब उस से कहा गया कि तुम्हारे इस ख़ुदकश धमाके से सब बेगुनाह मारे जाते तो उसने जवाब दिया कि हमारे मोलवियों ने बताया, इन सारे बेगुनाहों को तो अल्लाह शहादत का दर्जा अता फ़रमाएगा। काश इन बहके हुए गुमराह लोगों को कोई इस्लाम का ये ज़र्रीं उसूल पहुँचा दे कि इस्लाम में सिर्फ़ मक़सद का सही होना काफ़ी नहीं है, बल्कि मक़सद व मंज़िल तक पहुँचने का रास्ता भी सही होना ज़रूरी है।

समाज से नाइंसाफ़ी, ज़ुल्म, बेअदालती और दूसरी बुराईयों को ख़त्म करने की कोशिश करना भी इस्लाम में जेहाद है। यहाँ तक कि जो शख़्स अपने अहलो अयाल की रोज़ी-रोटी के लिए घर से बाहर निकलता है तो उसकी हैसियत मुजाहिदे फ़ी सबीलिल्लाह की है और उसे हर क़दम पर जेहाद का सवाब मिलता है। इसलिए इरशादे रिसालत है ''अपने अहलो अयाल की मेहनत व मशक़्क़त करने वाला मुजाहिद फ़ी सबीलिल्लाह की तरह है'' अगर कोई अपनी या अपने ख़ानदान की इज़्ज़त यहाँ तक कि अपनी जाएदाद की हिफ़ाज़त में अपनी जान दे दे तो उसको भी वही दर्जा है जो जंग के मैदान में शहीद हो जाने वाले का है।

ऊपर दी हुई बातों से साफ़ साबित होता है कि जेहाद के माने क़त्ल करने के नहीं हैं, बल्कि ये जेहाद ज़बान से भी हो सकता है, क़लम से भी, माल से भी और औलाद से भी और मजबूरी में तलवार से भी।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू), 11 फ़रवरी 2011[ई०])

(जारी)